

हाशिए पर रहने वाले बच्चों को 'हाशियाबन्दी' पढ़ाना

फ़राह फ़ारूक़ी

मैं पुरानी दिल्ली में स्थित सरकार द्वारा सहायता प्राप्त एक अल्पसंख्यक स्कूल की प्रबन्धक हूँ। स्कूल की प्राथमिक और उच्च कक्षाओं में साठ फीसदी से ज्यादा बच्चे सामाजिक–आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि से हैं। लर्निंग कर्व के सम्पादकों ने मुझसे एक लेख लिखने की गुजारिश की थी क्योंकि इस स्कूली समुदाय की सदस्य होने के नाते, मैं बहिष्करण और समावेशन के मुद्दों पर गहराई से विचार करती आई हूँ। मैं हमारे बच्चों की वंचित और दोयम दर्जे की जिन्दगियों के बारे में लिख सकती थी। लेकिन, चूँकि, इस पत्रिका के कई पाठक पेशेवर शिक्षक हैं, मुझे लगा कि मैंने नवम्बर 2012 में स्कूल में सामाजिक विज्ञान की जो कुछ कक्षाएँ ली थीं, उनके बारे में अपने विचार बाँटने चाहिए।

सम्बन्धित विद्यार्थी आठवीं कक्षा के थे और विषय था, 'हाशियाबन्दी' (Marginalisation), ऐसा विषय जो स्कूल के निर्धारित एन.सी.ई.आर.टी./सी.बी.एस.ई. पाठ्यक्रम का हिस्सा है। हमने कक्षा आठ की पाठ्यपुस्तक सामाजिक और राजनैतिक जीवन के अध्याय 'हाशियाबन्दी को समझना' (नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी. 2008) को बुनियादी सूत्र के रूप में इस्तेमाल किया। मेरे और बच्चों के बीच बातों–विचारों के जिस आदान–प्रदान का मैं वर्णन कर रही हूँ वह हिन्दी–हिन्दुस्तानी–उर्दू में हुआ था। शिक्षाशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में मेरा उच्च शिक्षा से लगातार वास्ता पड़ता रहता है, लेकिन पेशेवर शिक्षक के रूप में स्कूली शिक्षा से विरले ही वास्ता पड़ता है। यहाँ उल्लिखित छोटे से अनुभव ने दिल्ली के एक मिडिल स्कूल में हाशिए पर रहने वाले बच्चों को हाशियाबन्दी पढ़ाने से जुड़ी दुविधाओं को मेरे सामने ला दिया। मैं इन्हें आपके साथ बाँट रही हूँ।

इन बच्चों के साथ बिताए गए समय के बाद मेरे दिमाग में कई सवाल घूमने लगे। क्या यह अध्याय हाशिए पर रह रहे लोगों को अन्य वर्गों, समूहों और समुदायों की तुलना में अपनी स्थिति को बेहतर ढंग से समझने में मदद करेगा? क्या यह उन्हें अपनी जिन्दगियों में सुधार करने के सम्भावित उपायों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करेगा? या इसके उलट, सामाजिक ढाँचों (और उनकी सहायक संस्थाओं) के षड़यंत्र को पहचानने के बाद क्या उनकी प्रगति में और बाधा पहुँचेगी? क्या इसे पढ़कर वह सहम जाएँगे और खामोश हो जाएँगे और यथास्थिति को स्वीकार करते हुए अपनी स्थिति में बदलाव लाने के लिए जरूरी प्रयास नहीं करेंगे? इसके अलावा, चूँकि हम सबकी बहुत–सी पहचानें होती हैं, किसी समाज में हाशिए कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे वर्ग, जाति, लिंग, भाषा, धर्म इत्यादि। इस विषय को पढ़ाते हुए हमें एक–दूसरे पर चढ़ती पहचानों और उसके चलते सामने आने वाली और अधिक प्रतिकूल स्थिति के सवाल पर भी विचार करना होगा, पर साथ ही एक–दूसरे को काटती पहचानों की भी बात करना होगी। मैं इस लेख के अन्त में इस विषय पर वापस आऊँगी।

कक्षा के सभी बच्चे अल्पसंख्यक मुस्लिम पृष्ठभूमि के थे और ये यूपी, बिहार और राजस्थान से आए कुशल और अर्धकुशल श्रमिकों के प्रवासी परिवारों से थे। बीस बच्चों में से सिर्फ छह लड़कियाँ थीं। कम से कम पन्द्रह लड़के ऐसे थे जो छोटे कारखानों में काम करके अपने परिवार की आय में योगदान करते थे। लड़कियाँ आमदनी से जुड़ी अन्य गतिविधियों जैसे शर्ट, बैग, क्लिप, पर्स आदि पैक करने में अपने माता–पिता की मदद करती थीं। धूल और गंदगी से भरे धुँधले कारखाने कई बच्चों के लिए काम करने की जगह के साथ–साथ रहने के स्थान भी थे जहाँ वे सिर्फ अपने पुरुष रिश्तेदारों के साथ रहते थे ताकि उन्हें 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा' उपलब्ध हो सके। उनके घरों (यदि उन्हें घर कहा जा सकता है तो) में साफ–सफाई नहीं थी और पानी, स्वास्थ्य और खेलने की जगह जैसी बुनियादी सुविधाएँ सुलभ नहीं थीं।

इस अध्याय के ढाँचे का अनुसरण करते हुए मैंने आदिवासियों की हाशियाबन्दी की चर्चा करते हुए उन्हें पढ़ाना शुरू किया। जिन पहलुओं की हमने चर्चा की, उनमें सांस्कृतिक हाशियाबन्दी और शिक्षा व तरक्की के मौकों और सुलभता के ढाँचों से उसके सम्बन्ध की चर्चा शामिल थी। इसके माध्यम से बच्चे अच्छे से समझ पाए कि वैयक्तिक और सामाजिक स्तरों पर हाशियाबन्दी का अर्थ क्या होता है।

विद्यार्थियों ने जल्दी ही खास मुद्दों को अपनी जिन्दगियों से जोड़ लिया। उदाहरण के लिए, भाषा–सम्बन्धी अपेक्षाओं के चलते खुद उनकी हाशियाबन्दी के सन्दर्भ में उनका यह कहना था :

- *"एक बार हम एक मैच खेलने के लिए सेंट जॉर्ज स्कूल गए। वहाँ प्राइमरी स्कूल के छोटे–छोटे बच्चे भी अँग्रेजी बोल रहे थे। हमें बड़ा दुख हुआ कि हम अँग्रेजी क्यों नहीं बोल पाते। हम भी स्कूल जाते हैं, लेकिन हम तो अँग्रेजी बोलना नहीं सीख पाए।"*
- *"जब ग्रामीण इलाकों के बच्चे 'सड़क' के बजाय 'सरक' ('ड़' की जगह कोमल 'र') बोलते हैं तो उनका मजाक बनाया जाता है।"*

जब हम मुसलमानों की हाशियाबन्दी पर पहुँचे, तो बच्चे उसे और अच्छे से समझ पाए और उससे सम्बन्ध स्थापित कर सके। इस मामले में उनके पास बोलने को बहुत कुछ था :

- *"मुसलमानों को नीची नजरों से देखा जाता है।"*
- *"यदि मुसलमान और हिन्दू लड़ते हैं और मामला अदालत में जाता है, तो मुसलमानों को छोटा बना दिया जाता है। मुकदमा हिन्दू जीत लेते हैं।"*
- *"फिल्मों में खलनायक मुसलमान होते हैं।"*
- *"एक बार मेरी पड़ोसी नौकरी की तलाश में थी; दूसरे समुदायों के लोग उसे नौकरी नहीं देना चाह रहे थे। जब उसे नौकरी मिली, तो उसे बहुत अपमान भरे अनुभव से गुजरना पड़ा। क्या मुसलमान होना पाप है?"*
- *"जब कभी कहीं बम विस्फोट होता है, कसूरवारों में मुसलमानों का नाम सबसे पहले लिया जाता है।"*
- *"जब मुसलमान स्त्रियाँ बुरके में जाती हैं, तो अलग दिखने के कारण, गैर–मुसलमानों जैसा न दिखने के कारण, उनसे घृणा की जाती है।"*
- *"न सिर्फ हम, बल्कि सभी मुसलमान भाई इस बात से अवगत रहते हैं कि मुसलमानों को परेशान किया जाता है। यदि कोई अप्रिय घटना घटती है तो उसके लिए मुसलमानों को ही दोष दिया जाता है। मुसलमानों को फिल्मों में भी अपराधी दिखाया जाता है।"*
- *"मुसलमान परिवार आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं; बड़ों के साथ बच्चों को भी आर्थिक जिम्मेदारियों का भार उठाना पड़ता है। इसलिए वे स्कूल के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं और कालेज नहीं जाते।"*
- *"जब गुजरात में मुसलमानों के साथ अत्याचार और क्रूरता बरती गई तो उनकी मदद के लिए कोई आगे नहीं आया। ऐसा इसलिए हुआ कि वहाँ कोई भी मुसलमान सरकारी नौकरी में नहीं था।"*

इन प्रतिक्रियाओं को बारीकी से देखने पर हमें एहसास होगा कि बच्चों के वैयक्तिक अनुभवों को सामूहिक अनुभवों के रूप में वैधता मिल रही थी। इस अध्याय में सच्चर समिति की रिपोर्ट की सूचनाएँ और आँकड़े दिए गए थे जिन्होंने बच्चों के इन अनुभवों को और प्रामाणिकता प्रदान की; इसने उन्हें अपने अनुभवों को पूरे धार्मिक समुदाय के अनुभवों से जोड़कर देखने के लिए प्रेरित किया। उनकी प्रतिक्रियाओं ने इन बातों पर प्रकाश डाला : हिजाब या बुरका इस्तेमाल करने को लेकर दूसरे समुदायों के पूर्वाग्रह के अनुभव, राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं जैसे अदालतों और पुलिस विभाग में भेदभाव के अनुभव, शिक्षा और रोजगार आदि में मौकों का अभाव। कुछ बच्चे अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक–आर्थिक जिन्दगियों के बीच सम्बन्ध बनाने में भी सफल रहे थे।

मुझे एहसास हुआ कि बच्चों के साथ बिताए गए इस सत्र से मुझे जो कुछ भी हासिल हुआ वह सामुदायिक स्तर की एक अधिक व्यापक चेतना ही थी। अब मैं कुछ सवालों को खुद से पूछने के लिए मजबूर हो गई थी : क्या उनकी मुस्लिम चेतना, और यह समझ, कि यह समुदाय ज्यादा बड़े सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचों का शिकार है, उन्हें आत्मविश्वास देगी या उनकी प्रगति में और बाधा डालेगी। या क्या ये बच्चे संयोजित नुकसानों के विचार को मानेंगे और अपनी हाशियाबन्दी को कई कारकों के एक–दूसरे से जुड़ जाने का परिणाम मानेंगे? यह कहना सही हो सकता है कि किसी रूप में भारतीय मुसलमानों को बस मुसलमान

होने के कारण हाशिए पर रखा जाता है। पर इन मुस्लिम श्रमिकों–बच्चों की हाशियाबन्दी के लिए सिर्फ धार्मिक पहचान किस हद तक जिम्मेदार हो सकती है?

पाठ्यपुस्तक या शिक्षक के पास इतनी सामर्थ्य क्यों होना चाहिए कि वे धर्म को बच्चों की अपरिहार्य पहचान बना सकें? क्या उन्हें यह समझने की स्वतंत्रता नहीं मिलना चाहिए कि उनके पास एक नहीं अनेक पहचानें हैं? यदि भविष्य में वे अपने शोषण के विरुद्ध संघर्ष छेड़ना चाहें तो क्या उनके पास यह स्वतंत्रता नहीं होना चाहिए कि वे अपने बहुरंगी पहचानों में से किसी को 'एंकर', या 'प्रेरक तत्व' के रूप में चुन सकें? पर क्या यह उनकी एक अलग अल्पसंख्यक पहचान को एक अधिक बड़ी इकाई के भीतर विलीन कर देना या उसे धुँधला बना देना नहीं होगा? दूसरी तरफ, क्या तब इसका उलटा नहीं होता जब कुछ लोगों और उनकी बहुरंगी विशेषताओं को अनदेखा करते हुए उनपर मुसलमान होने की प्रबल पहचान लाद दी जाती है? क्या मेरे बच्चों को उनकी स्थिति की ऐतिहासिकता को नहीं समझना चाहिए और इस स्थिति को 'स्वाभाविक निष्कर्ष' के रूप में स्थापित करने के प्रयत्नों का विरोध करने के लिए प्रेरित नहीं करना चाहिए? उन्हें अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के संवैधानिक वादे के बारे में बताते हुए भी क्या उनकी हाशियाबन्दी को समझने और उसके खिलाफ संघर्ष करने की स्वतंत्रता नहीं मिलना चाहिए? यह बहुत जरूरी है कि विद्यार्थी और किशोर उनकी पहचान के बहुरंगी आयामों से सम्बन्ध स्थापित कर सकें; उनके ऐसा कर पाने पर ही वे अन्य लोगों की बहुरंगी पहचानों को समझ पाएँगे।

हम बच्चों की प्रतिक्रियाओं से यह समझ सकते हैं कि उनमें अलगाव की बहुत गहरी भावना है। उनमें यह एहसास जागना जरूरी था कि वे एक समुदाय का हिस्सा हैं ताकि वे एक–दूसरे से सम्बल हासिल कर पाते और मिलकर अपनी हाशियाग्रस्त स्थिति के खिलाफ संघर्ष कर सकते। इन चिन्ताओं ने मुझे शिक्षक की भूमिका की चुनौतीमय, महत्त्वपूर्ण और राजनैतिक प्रकृति का एहसास कराया। यह चुनौती मेरे बूते से बाहर थी। मुझे लगा कि मैं इस विषय को पूरी सम्पूर्णता और आत्मविश्वास के साथ नहीं पढ़ा सकती थी!

फिर भी, मैं इस विषय को इसके तर्कसंगत अन्त तक पहुँचाना चाहती थी। अनिल सेठी, जिनका मैं आभार व्यक्त कर चुकी हूँ, और जिन्होंने पूर्व में स्कूल में हिस्ट्री क्लब स्थापित करने में मदद की थी, ने इस कक्षा को आगे बढ़ाते हुए संचालन का प्रस्ताव रखा। नीचे विद्यार्थियों और उनके बीच दो घण्टे चली कक्षा से एक उद्धरण दिया गया हैः

शिक्षक (शि)ः हम सबकी बहुत–सी पहचानें हैं। क्या तुम बता सकते हो कि ये पहचानें कौन–सी हैं?

बच्चा/बच्चे (ब)ः हम हिन्दुस्तानी हैं लेकिन हम मुसलमान भी हैं।

शिः हाँ, पर और भी कई पहचानें हो सकती हैं। तुम बिहार से हो सकते हो और तुम्हारी अपनी कोई भाषा या भाषाएँ हो सकती हैं। तुम लड़का या लड़की हो सकते हो। और आय के विभिन्न स्तर भी पहचान का आधार हो सकते हैं? है कि नहीं?

बः हाँ, बिलकुल!

शिः तो फिर हम यह क्यों कहते हैं कि हमें मुस्लिम होने के कारण हाशिए पर रखा गया है? कुछ परिवारों में लड़कों को लड़कियों की तुलना में कहीं ज्यादा देखभाल और तवज्जो दी जाती है। वह लड़का उसके परिवार में हाशिए पर नहीं है, लेकिन उसकी परिवार की कम आमदनी के कारण वह अपने आपको समाज के हाशिए पर जरूर महसूस कर सकता है। क्या हाशियाबन्दी को एक ही चश्मे से समझा जा सकता है?

बः "हम मुसलमान जाति और दर्जे के हिसाब से निम्न हैं, इसलिए हम हाशिए पर हैं।"

शिः "कुछ परिस्थितियों में, मुसलमानों को एक जातिगत समूह के रूप में भी समझा जा सकता है। फिर पूरे समुदाय को एक जाति माना जाता है। कई स्थानों पर, ऊँची जाति के हिन्दू मुसलमानों के साथ वैसी ही छुआछूत मानते हैं जैसी कि वे नीची जातियों के साथ मानते हैं।"

बः "ऐसे सभी मुसलमान हाशियाबन्दी के शिकार हैं।"

शिः "यदि वे शिकार हैं, तो मुजरिम कौन हैं?"

बः "मुसलमानों को सरकार का सहयोग नहीं मिलता।"

(एक विस्तृत चर्चा होती है।)

शिः "कई प्रतिष्ठित मुसलमान पाकिस्तान चले गए (बँटवारे के समय)। क्या यह एक वजह है कि सरकार उन पर ध्यान नहीं देती?"

शि: "जब दो या अधिक (हाशियाबन्द) पहचानें, मिल जाती हैं, तो उसके कई नुकसान झेलना पड़ते हैं।"

ब: "कुछ परिस्थितियों में, यह सरकार की गलती नहीं होती। मुसलमान ज्यादा पढ़ते नहीं हैं।"

ब: "ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उन्हें गरीबी की वजह से काम पर लगना पड़ता है।"

शि: "फिर उनकी कौन–सी पहचान उन्हें नुकसान पहुँचा रही है?"

ब: "गरीब श्रमिक वर्ग से होना और मुसलमान होना, दोनों ही।"

बाद में हाशियाबन्दी के खिलाफ संघर्ष करने के तरीकों की चर्चा शुरू हुई। बच्चों की अलग–अलग प्रतिक्रियाओं से पता चला कि अधिकांश बच्चे अपनी अलग पहचानों को, और उससे जुड़े नुकसानों को समझ चुके थे। उन्होंने पहचान के कारकों के एक–दूसरे में भिदने की हकीकत को भी समझ लिया था। उनमें उनकी प्रगति के आड़े आने वाली सामाजिक–राजनैतिक रुकावटों की भी समझ थी, अलबत्ता अपनी उम्र के मुताबिक। उन्होंने समाधानों की भी बात की। ये 'समाधान' भले ही आदर्शवादी हों लेकिन क्या सपने किसी अभिक्रम का कच्चा माल नहीं होते?

मैंने शुरुआत में यह माना था कि बच्चे मेरे साथ खुलकर और बेझिझक बात कर रहे हैं क्योंकि वे मुझे एक सहधर्मी के रूप में देख रहे थे। पर अनिल के द्वारा आपसी आदर और विश्वास से भरा पहले से पूर्वाग्रह भरे फैसले न लेने वाला परिवेश सुनिश्चित किए जाने ने उन्हें और प्रफुल्लित और अपने अनुभव बाँटने के लिए उत्सुक बना दिया। उनके लिए, यह उनकी स्थिति को पहचानने जैसा था और उन्होंने किसी दूसरे समुदाय के व्यक्ति द्वारा दिखाई गई संवेदना को भी सराहा। इस चर्चा ने बच्चों को अपने सम्भावित उद्धार के उपाय के रूप में लोकतांत्रिक संघर्षों में झाँकने का भी मौका दिया:

ब: "हमें एक आन्दोलन शुरू करना होगा।"

ब: "हाँ, हम मुसलमानों के लिए एक आन्दोलन चलाएँगे, सरकार के खिलाफ आन्दोलन ताकि हमें नौकरियाँ मिल सकें।"

शि: "पर तुम लोग तो यह भी कह रहे थे कि हाशियाबन्दी इसलिए भी होती है क्योंकि तुम लोग श्रमिक वर्ग से हो।"

ब: "हाँ, श्रमिक होना उनकी हाशियाबन्दी को और बढ़ा देता है।"

शि: "तो तुम लोग अपने आन्दोलन को किस प्रकार संचालित करोगे?"

ब: "हम सभी श्रमिक भाइयों को लामबन्द करेंगे ताकि हमें उचित मजदूरी मिल सके, रहने को घर मिल सके; श्रमिकों के बच्चों को भी अच्छी शिक्षा मिलना चाहिए और उन्हें भी जिन्दगी में आगे बढ़ना चाहिए!"

शि: "जनान्दोलन का दरअसल क्या मतलब होता है? हम इसे कैसे संचालित करेंगे? यह कैसे सफल होगा? क्या हम इन आन्दोलन को मुसलमानों की हैसियत से संचालित करेंगे या फिर श्रमिकों की हैसियत से या फिर दोनों ही रूप में?"

मैं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 पर आधारित एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार की गई सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों की बड़ी प्रशंसक रही हूँ, लेकिन वे विभिन्न सन्दर्भों में संवादात्मक समझ की दिशा तय करने के लिए शिक्षक के हाथ में रहने वाले उपकरणों में से सिर्फ एक उपकरण हैं, और ऐसा ही होना चाहिए। किसी ऐसे स्कूल में जहाँ अधिकांश बच्चे सुविधासंपन्न या हिन्दू बहूसंख्यक पृष्ठभूमियों के होते हैं, वहाँ के शिक्षक हो सकता है कि अल्पसंख्यक समुदाय के सामने आने वाली चुनौतियों से बच्चों को परिचित कराने और उनमें एकजुटता की भावना जगाने के भिन्न उद्देश्यों के साथ इस विषय को पढ़ा सकते हैं।

छठवीं, सातवीं और आठवीं कक्षाओं के लिए सामाजिक और राजनैतिक जीवन, भाग 1, 2 और 3 की एन.सी.ई.आर.टी. पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने वाले लोगों ने समझदारी दिखाते हुए इन किताबों में सामाजिक–राजनैतिक हाशियाबन्दी पर एक अध्याय को शामिल किया है। इन किताबों में वे लोग एक–दूसरे से जुड़ती और एक–दूसरे को काटती पहचानों की बात करते हैं। उदाहरण के लिए, हमारे देश में, वर्ग और जाति या वर्ग और धर्म, समान रूपी भी हो सकते हैं और असमान रूपी भी। देश में ऐसे स्थान भी हैं जहाँ नीची जातियाँ या मुसलमान, निचले वर्ग भी हैं (एक–दूसरे से जुड़ती या समरूपी पहचानें) होते हैं, और ठीक इसी तरह ऐसे स्थान भी हैं जहाँ ऐसा नहीं होता। फिर भी, जैसा कि कई अध्ययनों और पड़तालों से पता चला है, मुसलमान होने, गरीब होने और बहुत सी अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों का

सामना करने की स्थितियाँ एक–दूसरे से जुड़ जाती हैं। अन्तिम विश्लेषण के तौर पर यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों, आदिवासियों और दलितों द्वारा झेले जाने वाली हाशियाबन्दी के संयोजित नुकसानों की हकीकत को विद्यार्थियों तक पहुँचाना बहुत जरूरी है।

आभार:

मैं अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में इतिहास और इतिहास–शिक्षा के प्राध्यापक, तथा मेरे मित्र और सहकर्मी अनिल सेठी को दिल से धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने इस लेख में उल्लिखित अभ्यास में भाग लिया, मैंने यहाँ जो विचार रखे हैं, मेरे साथ उनकी चर्चा की तथा इस लेख का तीक्ष्ण दृष्टि से सम्पादन किया।

फ़राह फ़ारूक़ी जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली में शिक्षाशास्त्र की प्राध्यापक हैं। वे पुरानी दिल्ली में स्थित, सरकार द्वारा सहायता प्राप्त, एक मुस्लिम बहुसंख्या वाले स्कूल की प्रबन्धक भी हैं। वर्तमान में वे शिक्षा विमर्श, जयपुर में "स्कूल मैनेजर की डायरी के कुछ पन्ने" नाम से लेखों की एक शृंखला लिख रही हैं। उनसे farah.farooqi@rediffmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** भरत त्रिपाठी